गाँव में प्राथमिक शिक्षा की पारिस्थितिकी
प्रवृत्तियाँ एवं बदलाव

विजय कुमार यादव*
ऋषभ कुमार मिश्र**

यह शोध-पत्र वाराणसी के निकट स्थित प्रतापपुर गाँव की प्राथमिक शिक्षा की अधिगम पारिस्थितिकी का वृत्त अध्ययन (केस स्टडी) प्रस्तुत करता है। इस शोध (वृत्त) अध्ययन का उद्देश्य पिछले 75 वर्षों में ग्रामीण भारत की विद्यालयी शिक्षा में हुए बदलावों की जाँच कर उसकी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता को दर्शाना था। इसके लिए उक्त गाँव में हुए सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बदलावों को संज्ञान में लेते हुए तीन विशिष्ट कालावधियों (1960 से 1975, 1985 से 2000 तथा 2010 से 2023) की प्राथमिक विद्यालयी शिक्षा की प्रवृत्तियों और प्रमुख प्रस्थानों का विश्लेषण किया गया। इस वृत्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि स्वतंत्रता के बाद के दशकों में ग्रामीण भारत में विद्यालयी शिक्षा के प्रति ललक थी। इसी कारण सामुदायिक प्रयास से गाँव के बच्चों की विद्यालयी शिक्षा हेतु प्रबंध किया जा रहा था। 1980 के दशक से राज्य के गहन प्रयास से विद्यालयी शिक्षा की दशा एवं दिशा बदली। इस दौर में अध्यापकों की नियुक्ति एवं प्रशिक्षण पर बल दिया गया था। इसी दौर में शिक्षा के प्रसार के लिए निजी विद्यालय भी पनपना शुरू हुए थे। इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में यद्यपि सरकारी विद्यालय संसाधन, शिक्षक और शिक्षणशास्त्र के आधार पर उन्नत हुए हैं, लेकिन ग्रामीण लोग अभी भी उन्हें 'कम शुल्क लेने वाले' निजी विद्यालयों की तुलना में कमतर मानते हैं। यह शोध अध्ययन यह भी बताता है कि ग्रामीण परिवेश में सामाजिक गतिशीलता के लिए शिक्षा की व्यापक स्वीकृति है, लेकिन शिक्षा द्वारा सामाजिक बदलाव के लक्ष्य पर हितरक्षक मौन हैं। इस ग्रामीण परिवेश में संसाधन संपन्नता, विद्यार्थियों की अकादमिक उपलब्धि और उच्च शिक्षा की गतिशीलता को पहचाना जा रहा है, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से होने वाले बहिष्करण को संज्ञान में नहीं लिया जा रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की एक प्रमुख प्राथमिकता गाँवों के विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को सुनिश्चित करना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह नीति उन चुनौतियों और संभावनाओं को रेखांकित करती है, जो ग्रामीण परिवेश के शिक्षकों और विद्यार्थियों के विद्यालयी अनुभवों का हिस्सा है। इस नीति में विशेष रूप से उल्लिखित है कि ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थी वृहद पैमाने की उपलब्धि परीक्षाओं पर बेहतर प्रदर्शन नहीं कर पाते हैं। इस सीमा को पार करने के लिए यह नीति संसाधन युक्त विद्यालयों में, पेशेवर अध्यापकों के माध्यम से शिक्षार्थी केंद्रित और अनुभव केंद्रित अधिगम द्वारा सुधार की

**शोधार्थी*, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, महाराष्ट्र 442001
***असिस्टेंट प्रोफेसर*, स्कूल ऑफ एजूकेशन स्टडीज डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली 110006

संस्तुतियों को प्रस्तुत करती है। इस नीति में भारत के गाँवों में हो रहे बदलावों को संज्ञान में लेते हुए उनकी स्थानीय आवश्यकताओं और संदर्भों से साम्य रखते हुए शैक्षिक सुधारों को क्रियान्वित करने पर भी बल दिया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के उक्त भविष्योन्मुखी परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए इस शोध-पत्र में वाराणसी के निकट स्थित प्रतापपुर गाँव के वृत्त अध्ययन द्वारा पिछले 75 वर्षों में ग्रामीण भारत की विद्यालयी शिक्षा में हुए बदलावों का वर्णन किया गया है।

भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विशेषताओं में 'गाँव' की उपस्थिति एक आरंभिक इकाई के रूप में है, जिसके सापेक्ष 'सभ्यता के आख्यान' को रचा जाता है (जोधका, 2016)। इस आख्यान में एक ओर गाँव की प्रकृति से निकटता, पारस्परिक निर्भरता और सौहार्द्र की रूमानी तस्वीर जैसी विशेषताएँ विद्यमान हैं, वहीं जाति, वर्ग और जेंडर के आधार पर पदानुक्रमिक समाज के कटु यथार्थ भी अवलोकनीय हैं (कुमार, 2014)। गाँव को अध्ययन की इकाई मानकर और शिक्षा को केंद्र में रखते हुए शोध अध्ययनों को देखा जाए तो ज्ञात होता है कि पिछले 75 वर्षों के दौरान राज्य ने 'लोकवस्तु' के रूप में विद्यालयी शिक्षा की उपलब्धता हेतु महत्वपूर्ण प्रयास किए हैं।

विशेष रूप से बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशक और इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण राज्य की नीतियों का एक प्रमुख लक्ष्य रहा है। ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड, सर्व शिक्षा अभियान और समग्र शिक्षा अभियान जैसे केंद्र प्रायोजित कार्यक्रम इसके उदाहरण मात्र हैं। शिक्षा का अधिकार कानून प्राथमिक विद्यालयी शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा देकर इसकी सुलभता को राज्य के लिए बाध्यकारी बनाता है। इन कार्यक्रमों के सकारात्मक परिणाम भी रहे हैं। विद्यालयी नामांकन में सुधार, नामांकन में जेंडर, जाति और आयवर्ग के अंतराल का कम होना, उच्च शिक्षा की ओर संचरण दर में वृद्धि जैसे संकेतकों के द्वारा राज्य अपनी उपलब्धियों का उल्लेख भी करता है। राज्य के इन प्रयासों का लक्ष्य सामाजिक-सांस्कृतिक सुधारों के लिए भावी नागरिकों को तैयार करना है। ऐसा माना गया है कि शिक्षित नागरिक न केवल अपनी वैयक्तिक आकांक्षाओं एवं अवसरों के लिए सचेत होंगे बल्कि वे 'आधुनिकता' की चेतना से युक्त होते हुए सामाजिक बदलाव में भी योगदान करेंगे।

इसके तुलना में अवलोकनीय है कि ग्रामीण समुदाय द्वारा सामाजिक गतिशीलता की आकांक्षा की पूर्ति हेतु विद्यालयी शिक्षा को महत्वपूर्ण निवेश माना गया। ग्रामीण युवाओं में भविष्य के आर्थिक अवसरों को भुनाने और ग्रामीण समाज की परंपरागत रूढ़ियों से मुक्त होते हुए नगर में सम्मान सहित जीवन के स्वप्न ने उनको शिक्षा के लिए हर तरह के कष्ट उठाने का साहस दिया। इस पृष्ठभूमि में कृष्ण कुमार (2014) का मानना है कि ग्रामीण भारत में शिक्षा का एक लक्ष्य गाँवों को 'आधुनिक' और 'विकसित' बनाना रहा है, लेकिन इन दोनों संप्रत्ययों में गाँव को नगर से कमतर और उस पर निर्भर इकाई मान लिया गया है (कुमार, 2014)। शिक्षा के रास्ते गाँवों में आधुनिकता के प्रसार का सफल परिणाम नगरों में प्रवसन को माना गया है। इस विश्वास की व्यापक स्वीकृति के कारण गाँव के विद्यालय बने।

उक्त प्रवृत्तियों से सहमति रखते हुए जोधका (2016) का मानना है कि गाँवों को बदलाव से परे एक बंद इकाई के रूप में देखकर कोई भी समाज वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया जा सकता है। गाँवों का वैज्ञानिक अध्ययन करते हुए उन बदलावों एवं निरंतरताओं को दर्ज करने की आवश्यकता है, जो वृहद्तर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों के बीच गाँव में प्रतिफलित हो रहे हैं। इस सैद्धांतिक दृष्टि से सहमति रखते हुए यह शोध अध्ययन प्रतापपुर गाँव के निवासियों के तीन विशिष्ट कालावधियों (1960 से 1975, 1985 से 2000 तथा 2010 से 2023) के विद्यालयी अनुभवों के आख्यानों को व्याख्यायित करता है। इस व्याख्या द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया है कि पिछले 75 वर्षों के दौरान राज्य के सांस्थानिक प्रयास और सामुदायिक आकांक्षाओं के बीच ग्रामीण भारत में प्राथमिक विद्यालयी शिक्षा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ और प्रमुख बदलाव क्या हैं?

न्यादर्श एवं शोध विधि

इस शोध अध्ययन का उद्देश्य वृत्त अध्ययन विधि द्वारा प्रतापपुर गाँव में प्राथमिक शिक्षा में हुए बदलावों की पड़ताल करना था। प्रतापपुर उत्तर प्रदेश के वाराणसी जिले में वाराणसी शहर से लगभग 30 किलोमीटर दूर एक हिंदी भाषी गाँव है, जिसमें 12 जातियाँ निवास करती हैं। कृषि, कुटीर उद्योग एवं दैनिक आधार पर नगरीय क्षेत्र में मज़दूरी इस गाँव की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। इस कार्य में उक्त गाँव के बुज़ुर्गों और प्रौढ़ों के विद्यालयी अनुभवों से संबंधित आख्यानों को अर्द्ध संरचित साक्षात्कार द्वारा एकत्रित कर उनका विषयवस्तु विश्लेषण किया गया। इसके लिए गाँव के विभिन्न जाति वर्गों को ध्यान में रखते हुए 10 बुज़ुर्गों और 25 प्रौढ़ों को भागीदार बनाया गया। जिसमें भागीदार (बुज़ुर्गों) का विद्यालयी अनुभव लगभग वर्ष 1960 से 1975 के बीच का है और भागीदार (प्रौढ़ों) का विद्यालयी अनुभव वर्ष 1985 से 2000 के बीच का है तथा समकालीन संदर्भों में विद्यालयी शिक्षा हेतु वर्ष 2010 से 2023 के बीच का विद्यार्थियों एवं शिक्षकों का अनुभव शामिल है। शोध उद्देश्य की पूर्ति के लिए गाँव में वर्तमान में संचालित एक सरकारी और तीन निजी स्कूलों की कक्षाओं का अवलोकन और यहाँ अध्ययनरत विद्यार्थियों से फोकस ग्रुप डिस्कशन की गई। केंद्रीय समूह चर्चा दो सत्रों में पूर्ण की गई थी और ये सत्र एक ही दिन में 15 मिनट के अंतर पर आयोजित किए गए थे। प्रत्येक सत्र की अवधि 40–60 मिनट की थी। इस प्रकार के कुल 12 समूहों के साथ चर्चा की गई। इसके अलावा अभिभावकों के साक्षात्कार को पूरक आँकड़ों के स्रोत के रूप में प्रयुक्त किया गया। इस शोध-पत्र में वर्णित शोध कार्य जुलाई 2019 से दिसंबर 2019 के बीच संपन्न किया गया था।

बुज़ुर्गों की विद्यालयी शिक्षा से जुड़ी यादें (1960 से 1975 तक)

प्रतापपुर गाँव के बुज़ुर्गों द्वारा 1960 से 1075 तक की अवधि के अपने विद्यालयी अनुभवों को आख्यान द्वारा बताया गया है, जिसमें उन्होंने अपने गाँव की प्राथमिक शिक्षा का खाका प्रस्तुत किया। शोध अध्ययन के भागीदार बुज़ुर्ग रेखांकित करते हैं कि उक्त कालावधि में सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों की संख्या अत्यंत कम थी। गाँव में केवल एक सरकारी विद्यालय था, जो खस्ताहाल था।

शिक्षा के महत्व को स्वीकारते हुए सामुदायिक सहयोग से नए-नए प्राथमिक विद्यालय आरंभ हो रहे थे। इन विद्यालयों में संसाधनों का अभाव था। अधिकतर संसाधन स्थानीय समुदाय द्वारा उपलब्ध कराए जाते थे। इन विद्यालयों का संचालन उच्च जातियों और वर्गों के द्वारा किया जाता था। विद्यालय में प्रवेश के लिए कोई जातीय या जेंडर आधारित बाधा नहीं थी, फिर भी विद्यालय में उच्च वर्ग और जाति के लड़कों का ही नामांकन अधिक था। विद्यालयों में आवश्यकतानुरूप शिक्षक उपलब्ध नहीं थे। इस कारण नियमित कक्षाएँ नहीं होती थीं।

भागीदार यह भी बताते हैं कि उनके समय में प्राथमिक शिक्षा महँगी नहीं थी। अधिकांश विद्यालयों में प्राथमिक स्तर तक कोई फीस नहीं ली जाती थी और माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा हेतु भी नाममात्र की ही फीस थी। तत्कालीन शिक्षण संस्थानों की संरचना को समझने के लिए एक भागीदार का उद्धरण इस प्रकार है—"प्रतापपुर प्राइमरी स्कूल तो किराए के मकान में चलता था। एक पटेल का मकान था, उसी में स्कूल चलता था। सरकार उन्हें किराया देती थी। उस समय मिर्जामुराद प्राइमरी विद्यालय बहुत अच्छा था। इस विद्यालय का भवन भी कच्चा था लेकिन ज़मीन एकदम साफ़-सुथरी और दीवार चमकती थी, छत खपरैल की थी। विद्यालय के ठीक बगल में एक मंदिर था और मंदिर के पास एक कुआँ था। उस कुएँ का पानी बड़ा मीठा होता था। पानी पीने के लिए वहाँ एक रस्सी, एक बाल्टी और एक लोटा रखा रहता था। विद्यालय के सामने एक मैदान था, जिसमें सुबह-सुबह प्रार्थना होती थी। इसी मैदान में खेलकूद भी होता था।" इस उद्धरण में बताया गया है कि उस दौर में गाँव में जो विद्यालय खुले थे, वे स्थानीय समुदाय के सहयोग से खुले थे। विद्यालय के पास न तो अपनी ज़मीन थी और न ही कोई ढाँचा था।

अन्य भागीदारों ने भी अपने आख्यान में साझा किया कि विद्यालय में मेज और कुर्सी इत्यादि की सुविधाएँ भी नहीं थीं। बैठने की व्यवस्था स्वयं बच्चों को करनी पड़ती थी। विद्यालयों में श्यामपट्ट भी नहीं था। इस संदर्भ में एक अन्य भागीदार का कथन अवलोकनीय है, "केवल शिक्षक के लिए मेज-कुर्सी थी। वह भी गाँव वालों ने दी थी। बच्चे अपना-अपना बोरा लाकर उस पर बैठते थे। कोई ब्लैकबोर्ड नहीं था। शिक्षक सबको स्लेट पर सवाल देते थे और सबको बारी-बारी हल करवाते थे।" संसाधनों के अभाव के साथ-साथ शिक्षकों के नियमित न आने, शिक्षकों का अभाव होने, नए विद्यालयों का आरंभ, लेकिन शीघ्र ही बंद हो जाने जैसे अनुभवों को भी भागीदारों ने साझा किया।

भागीदारों का अनुभव प्रमाण है कि इस दौर में ग्रामीण परिवेश में शिक्षा को लेकर जागरूकता का माहौल बन रहा था। समुदाय के हित के लिए समुदाय के सहयोग से विद्यालय खुल रहे थे, लेकिन इनके संचालन के लिए संसाधन आधार और अकादमिक सहयोग का अभाव सबसे बड़ी चुनौती थी। इसी का परिणाम था कि एकल शिक्षक विद्यालय में सीमित संसाधनों के बीच मौखिक और रटंत पद्धति से पढ़ाई हो रही थी। इस दौर की विद्यालयी शिक्षा का एक उदाहरण इस प्रकार है, "कक्षा एक से कक्षा पाँच तक हम लोगों के पास कोई खास किताब नहीं होती थी। किसी-किसी के पास गणित की किताब होती थी। गुरु जी सब को पटरी या स्लेट पर आकर सवाल देते थे और उसे हल करवाते थे। हिंदी में बस कहानियाँ

सुनाते थे। पटरी पर ही बोल-बोल कर आलेख और सुलेख लिखवाते थे। हाँ इतिहास पढ़ाते थे, इतिहास की कहानियाँ सुनाते थे, रानी लक्ष्मी बाई की कहानी, भगत सिंह की कहानी, चंद्रशेखर आज़ाद की कहानी आदि। गुरु जी अपनी किताब से विज्ञान, हिंदी, इतिहास और गणित के सवाल कॉपी में नोट करवाते थे।" यह उद्धरण बताता है कि इस दौर में अधिकांश विद्यार्थियों के पास पुस्तकें नहीं होती थीं तथा किसी भी प्रकार की पाठ्यचर्या निर्धारित नहीं थी। विषय के रूप में मुख्यतः गणित और हिंदी विषय पर ध्यान दिया जाता था। हिंदी में भी प्रायः अक्षर ज्ञान, शब्द संरचना तथा मात्रा ज्ञान पर बल दिया जाता था। इतिहास कहानियों के रूप में पढ़ाया जाता था। भागीदारों ने साझा किया कि गणित के अलावा अन्य विषयों को पढ़ाने में व्याख्यान विधि की प्रधानता थी। अन्य विषयों को समझने-समझाने के बजाय रटने-रटाने पर बल दिया जाता था। शिक्षक विषयवस्तु को नोट करवा देते थे और रटने या याद करने के लिए कहते थे। विद्यार्थी भी विषयवस्तु को याद कर लेने का प्रयास करते थे।

साक्षात्कार के दौरान बुज़ुर्ग भागीदारों ने बताया कि उनके दौर में प्राथमिक स्तर पर एक कक्षा से दूसरी कक्षा में प्रोन्नति के लिए कोई स्पष्ट मानक परीक्षा निर्धारित नहीं थी। शिक्षक बच्चों का मूल्यांकन करते थे और संतुष्ट होने पर उन्हें अगली कक्षा में पढ़ने के लिए योग्य मान लेते थे। सामान्यतया वर्ष के अंत में शिक्षक मौखिक रूप से बच्चों से कुछ प्रश्न करते थे। शिक्षक जब विद्यार्थी के उत्तर से संतुष्ट हो जाते थे, तो उन्हें अगली कक्षा में प्रवेश दे दिया करते थे। इस दौर में संस्थागत स्तर पर लिखित मूल्यांकन की प्रक्रिया कक्षा 5 से प्रारंभ होती थी। इस स्तर पर सभी विषयों में प्रश्नों के लिखित उत्तर देने होते थे। परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को अंकपत्र और स्थानांतरण प्रमाण-पत्र प्रदान किया जाता था। इन्हीं प्रमाणपत्रों के आधार पर उन्हें उच्च प्राथमिक स्तर पर प्रवेश मिलता था। भागीदार बुज़ुर्गों ने पाठ्य सहगामी क्रियाओं के रूप में खेल को पहचाना। भागीदारों ने देशज खेलों, जैसे— बेलन-लाठी दौड़, गणित दौड़, संदेश दौड़ और लाठी भाजने का उल्लेख किया। कुछ भागीदारों ने वॉलीबॉल और फुटबॉल का भी उल्लेख किया। भागीदारों ने साझा किया कि विद्यालय में शारीरिक शिक्षा और खेल के अलावा संगीत, बाल-सभा, कविता, कहानी इत्यादि कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते थे। इन कार्यक्रमों में बच्चों को प्रतिभाग करना होता था। बाल सभाओं में विद्यार्थियों द्वारा कविताएँ और कहानियाँ सुनाई जाती थीं।

बुज़ुर्ग भागीदारों ने साक्षात्कार के दौरान अपने समय के कक्षा अनुभवों को साझा करते हुए यह भी बताया कि उस समय शिक्षकों का मुख्य उद्देश्य शिक्षण के दौरान नैतिक मूल्यों से परिचित कराना और उसके पालन को सुनिश्चित करना था। इस सुनिश्चित करने के लिए सख्त अनुशासन एक प्रमुख उपकरण था। उदाहरण के लिए, भागीदार (बुज़ुर्ग) का कथन है, "हमारे ज़माने में पढ़ाई बहुत अच्छी थी। इस दौर में अनुशासन कड़ा था। अध्यापक आते थे और केवल पढ़ाते थे और अपना विषय पढ़ाते थे। इसके साथ यह भी बताते थे कि किस तौर-तरीके से रहना चाहिए? अपने माता-पिता से और बड़ों से कैसे बात करना चाहिए? गुरु को कैसे प्रणाम करना चाहिए? विद्यालय और परिवार में कैसे रहनी चाहिए?" यह उल्लेखनीय है कि भागीदारों ने नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों के लिए बार-बार 'तौर-तरीका' एवं 'तमीज़'

जैसे शब्दों का प्रयोग किया। वे इनके पालन के लिए कठोर अनुशासन को वैध स्वीकारते हैं। विद्यालयों में नैतिक शिक्षा की पहली सीढ़ी विद्यार्थियों की नियमित उपस्थिति सुनिश्चित करना था। इसके लिए अनुशासन एवं दंड की भूमिका को प्रासंगिक मानने वाला यह उद्धरण अवलोकनीय है, “अगर स्कूल न जाएँ तो गुरु जी पकड़ कर ले जाते और बहुत मारते। बच्चे डर के मारे भी स्कूल जाते। हम दोस्तों की हिंदी, अंग्रेज़ी तो ठीक-ठाक थी, गणित कमबल था तो उसमें मार पड़ती थी। कभी-कभी मन करता कि पढ़ने न जाए, क्योंकि गुरु जी मारते बहुत थे। विद्यालय में जो कड़े नियम थे, उससे बड़ा लाभ हुआ, उसी नाते डर के मारे बच्चे पढ़ते थे।” उक्त कथन से स्पष्ट है कि उस दौर में विद्यालय में अनुशासन बनाए रखने के लिए कठोर शारीरिक दंड दिया जाता था। इस बात की पुष्टि करते हुए भागीदारों ने धूप में खड़ा करने, मुर्गा बनाने, बेंत से मारने आदि दंडों का उल्लेख किया।

इस स्थिति के प्रत्यक्षण और परिणाम को यह उद्धरण स्पष्ट करता है, “हमारे ज़माने में जो काम अध्यापक देते थे, अगर बच्चा काम करके नहीं आता था, तब उसे बहुत मार पड़ती थी। जो काम दे दिए और जो कह दिए, करिए, नहीं तो मरबो करें और क्लास में मुर्गा बनवा दें। अगर कोई लड़का एक दिन भी नहीं आता था तो दूसरे दिन पता लगाया जाता था कि वह लड़का कहाँ है? और क्यों नहीं आया? और पता चलता था कि डर के मारे नहीं आया है तो मास्टर साहब खुद घर आते थे, उनके माता-पिता से पूछते थे कि क्यों नहीं भेजा आपने... अगर माता-पिता बोल दिए कि जाता ही नहीं है तो मास्टर साहब वहीं पर मारते थे, और मारते-मारते स्कूल ले जाते थे।” इस तरह के अनुभवों के बीच शिक्षक की सत्ता को गुरु के समतुल्य मान्यता प्राप्त थी। अपने अध्यापकों को याद करते हुए बुज़ुर्ग भागीदारों ने उनकी भूमिका को ज्ञान और संस्कार देने वाले के रूप में व्याख्यायित किया। भागीदारों ने अपने आख्यान में शिक्षक को पिता की तरह प्रेम करने वाले और अनुशासन प्रिय की छवि को उभारा।

इस संदर्भ में एक भागीदार का उद्धरण अवलोकनीय है, “हमारे समय में शिक्षक बच्चों को पढ़ाते-लिखाते थे, ज्ञान देते थे, नहीं आने पर बताते भी थे। वे मारते और डाँटते भी थे। विद्यार्थी भी शिक्षकों से डरता था। उनकी इज़्ज़त भी करता था। अगर कोई बच्चा रास्ते में चलते हुए शिक्षक को देख लेता था तो जाकर उनके पैर पकड़ता था। शिक्षक भी बच्चों को बाप की तरह प्यार करता था। वह विषय नहीं आने पर उन्हें मारता-डाँटता था, लेकिन उन्हें सिखाने के लिए खूब प्रयास करता था। जिस दिन कोई बच्चा नहीं आता था, उसके अगले दिन शिक्षक उसके घर चला जाता था। ज़रूरत पड़ने पर घर बुलाकर पढ़ाता था।” उपर्युक्त कथन शिक्षक-शिक्षार्थी संबंध के संदर्भ में भारतीय समाज के सांस्कृतिक विश्वास को प्रकट करता है, जहाँ अध्यापक को अभिभावक की भूमिका में विद्यार्थी के नैतिक और बौद्धिक विकास का दायित्व सौंपा जाता है। उक्त उद्धरण में नैतिक और बौद्धिक विकास के बीच अनुशासन जन्य भय स्पष्ट रूप से अवलोकनीय है। इसी का परिणाम है कि किसी भागीदार ने भी सीखने में आनंद का उल्लेख नहीं किया। सभी भागीदारों के लिए सीखना अध्यापक द्वारा निर्धारित एवं नियंत्रित गतिविधि है, डाँट-मार इसका अभिन्न अंग है। इस विश्वास की व्यापकता शिक्षार्थी केंद्रित शिक्षणशास्त्र को शिक्षक,

शिक्षार्थी एवं अभिभावक तीनों के लिए अप्रासंगिक कर देती है। इसी का परिणाम है कि जो बुज़ुर्ग स्वयं अनुशासनबद्ध माहौल में विद्यार्थी रहे हैं, वे अभिभावक की भूमिका में भी इसे वैध ठहराते हैं।

प्रौढ़ों की विद्यालयी शिक्षा से जुड़ी यादें (1985 से 2000 तक)

बुज़ुर्ग भागीदारों के आख्यान से ज्ञात होता है कि अस्सी के दशक में गाँव में निजी विद्यालयों की स्थापना हो रही थी। इन विद्यालयों के शुरुआती दौर में पर्याप्त चुनौतियाँ थीं। इसी कारण इनमें से कई संस्थाएँ कुछ समय बाद बंद हो गईं और कुछ ने अपना अस्तित्व बनाए रखा। गाँव में नए निजी शैक्षिक संस्थाओं के उदय के दो कारण थे। प्रथम, गाँव में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ रही थी और गाँव के अधिकांश बच्चे अच्छी शिक्षा प्राप्त करने हेतु गैर-सरकारी शैक्षिक संस्थाओं की ओर उन्मुख हो रहे थे। दूसरा, गैर-सरकारी शैक्षिक संस्थाओं के खुलने के साथ-साथ शिक्षा व्यावसायिक स्वरूप धारण करने लगी थी। अतः आर्थिक लाभ के लिए भी विद्यालय खोले जा रहे थे। इस शोध अध्ययन के प्रौढ़ भागीदारों ने साझा किया कि इस दौर में खुलने वाले अधिकांश निजी विद्यालय गाँव के ही शिक्षित युवाओं द्वारा खोले गए थे। इन विद्यालयों के खुलने का एक प्रमुख उद्देश्य विद्यालय के माध्यम से आजीविका कमाना था। इस संदर्भ में भागीदार (प्रौढ़) का कथन अवलोकनीय है, "1990 के बाद जितने स्कूल खुले, सब पैसा कमाने की चाहत में खुले। सब में मनमानी लूट शुरू हो गई थी। एक प्राइमरी स्कूल के मालिक ने तो इतना कमाया कि उसने इंटर कालेज खोल दिया। कुछ साल बाद इसी मालिक ने डिग्री कालेज खोल दिया।" इस दौर में ग्रामीणों में निजी विद्यालयों को अच्छी शिक्षा का केंद्र मानने की स्वीकृति भी बढ़ने लगी थी। इसकी पुष्टि करते हुए एक प्रौढ़ भागीदार ने बताया कि गाँव में पहले से ही यह धारणा बन चुकी थी कि अच्छी शिक्षा शहर के कॉन्वेंट विद्यालयों में मिलती है। इस धारणा की पूर्ति करते हुए 1997 में गाँव में प्रथम कॉन्वेंट स्कूल खुला था। यह विद्यालय गाँव का सबसे महँगा विद्यालय था। उल्लेखनीय है कि नब्बे के दशक तक कृषि और गैर-कृषिगत क्षेत्रों में सुधार के कारण गाँव की आर्थिक स्थिति बेहतर हो रही थी, परिणामस्वरूप लोगों में शिक्षा के लिए अधिक निवेश करने की प्रवृत्ति को बल मिल रहा था। इसके अतिरिक्त गाँव से प्रवास कर महानगरों में बसने के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण निवेश माना जाने लगा था। इसका सम्मिलित प्रभाव विद्यालयों में नामांकन, ठहराव और संचरण पर पड़ रहा था। आर्थिक सुधारों और औपचारिक शिक्षा के विकल्पों में वृद्धि के बावजूद गाँव के बच्चों पर 'गरीबी' की मार पड़ रही थी। इस स्थिति में सरकारी विद्यालय ही इनके हितरक्षक थे। इसी कारण इस दौर में आर्थिक आधार पर निजी विद्यालय और सरकारी विद्यालय में विभाजन भी प्रकट होने लगा तथा ये दोनों विद्यालय अलग-अलग आर्थिक वर्गों के प्रतिनिधि बनने लगे।

यद्यपि इस दौर में विद्यालयी शिक्षा की सुविधा बढ़ी थी, लेकिन इनका संसाधन आधार सीमित था। साक्षात्कार के दौरान प्रौढ़ भागीदारों ने बताया कि इस दौर में गाँव के सरकारी शिक्षण संस्थान कच्चे भवन में ही चलते थे। भवन की छत लकड़ी, घास और मिट्टी से बने खपरैल से निर्मित होती थीं, लेकिन भवन में कमरों की संख्या बढ़ गई थी और अध्यापकों की नियुक्ति हुई थी। कुछ भागीदार यह भी साझा

करते हैं कि विद्यालयों में पेयजल और शौचालय की समस्या विद्यमान थी। यह स्थिति सरकारी और निजी विद्यालयों दोनों में थी। प्रौढ़ भागीदार स्वीकार करते हैं कि इस अवधि में सरकारी प्राथमिक विद्यालय की भौतिक संरचना सुविधाजनक नहीं थी, तथापि नए शिक्षकों की नियुक्ति से विद्यालय में शिक्षण-अधिगम का बेहतर परिवेश निर्मित हुआ था। गाँव में जो निजी शिक्षण संस्थान खुले थे, उनकी भौतिक संरचना भी निम्न स्तर की थी। उदाहरण के लिए, 'पंडित जी के विद्यालय' का संस्मरण इस प्रकार हैं, "जब हम प्रतापपुर प्राइमरी में कक्षा 4 में पढ़ रहे थे तो यहीं एक अस्पताल था। यहाँ डॉक्टर नहीं आते थे। इसी में जय प्रसाद मिश्र (जय पंडित जी) ने स्कूल खोला। उसके बहुत बाद जब दाढ़ी पंडित जी का जय पंडित जी के साथ विवाद हुआ तब यह स्कूल बंद हो गया। जय पंडित जी अपना स्कूल अपने बगीचा में चलाने लगे। दाढ़ी पंडित जी अपना घर-घर जाकर पढ़ाने लगे। उसके बाद पटेल बस्ती में एक स्कूल खुला। इस स्कूल में तो दो कमरे थे और एक टूटा-फूटा शौचालय। पेशाब करने के लिए बाहर खेत में जाते थे।" उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि नब्बे के दशक में गाँव में जो निजी विद्यालय खुले थे, उनकी भौतिक संरचना भी निम्न स्तर की थी। किंतु नब्बे के दशक के बाद गाँव के आस-पास जो विद्यालय खुले उनकी भौतिक संरचना अपेक्षाकृत बहुत समृद्ध थी। इसके समर्थन में एक भागीदार का कथन अवलोकनीय है, "जब हम अर्जुन मेमोरियल में गए तो वहाँ सब व्यवस्था अच्छी थी। जब हम गए थे तो शुरू में तो 10 कमरा था। उसके अलावा एक बड़ा-सा ऑफिस था। ऑफिस में एक प्रिंसिपल रूम था और टीचरों के लिए एक हॉल था। पानी के लिए नल लगा था। लड़के-लड़कियों के लिए अलग-अलग शौचालय बना था। स्कूल के अंदर ही बड़ा-सा खेल का मैदान था। हर कमरे में पंखा लगा था। ब्लैकबोर्ड था। बच्चों को बैठने के लिए टेबल और बेंच था। अध्यापकों के लिए कुर्सी-मेज था।" भागीदार ने उक्त उद्धरण के द्वारा यह इंगित किया कि निजी विद्यालय अपने भवन एवं अन्य संसाधनों द्वारा खुद को एक बेहतर विकल्प की तरह प्रस्तुत कर रहे थे। इसके द्वारा वे अधिक शुल्क को भी बेहतर सिद्ध करने का प्रयास कर रहे थे।

वर्ष 1985 से 2000 के बीच जाति और जेंडर के आधार पर विद्यालयी शिक्षा में प्रत्यक्ष बाधाएँ नहीं थीं, लेकिन अप्रत्यक्ष तरीके से बहिष्करण हो रहा था। इसके समर्थन में एक भागीदार का कथन इस प्रकार है, "हमारे समय में तो सभी को प्रवेश मिल जाता था। जाति-धर्म से कोई मतलब नहीं था, लेकिन ज्यादातर जो छोटी जाति जैसे चमार और गोंड थे, ये लोग पढ़ने ही नहीं जाते थे, बस जो जागरूक थे वही पढ़ने जाते थे।" यह उद्धरण जागरूकता के मुखौटे में जातीय और जेंडर आधारित संरचनात्मक बहिष्करण को अनदेखा करने का प्रमाण है। इसकी पुष्टि उक्त भागीदार के इस विचार से होती है, "इन जातियों के बच्चे बेचारे हरवही-जोतवही करते थे और जो पढ़ने भी आते थे वो ठीक से पढ़ते नहीं थे। कहने का मतलब है कि जो गरीब घर के बच्चे थे, वे कम पढ़ पाते थे। थोड़ा बड़ा हुए तो काम धंधा में लग गए।" इस कथन से स्पष्ट है कि जाति और गरीबी का दुष्चक्र गाँव में एक बड़ी आबादी की औपचारिक शिक्षा में बाधक था। 'ठीक से न पढ़ना' को व्यक्तिगत समस्या बताकर ड्रापआॅउट के सांस्थानिक कारणों को संज्ञान में नहीं लिया जा रहा था। शोध के भागीदारों के आख्यान

बताते हैं कि इस दौरान ग्रामीण समुदाय बालिकाओं की शिक्षा के प्रति भी जागरूक हुआ था। विद्यालयों में बालिकाओं के नामांकन में सुधार हुआ था, फिर भी बहिष्करण की संरचनात्मक बाधाएँ, जैसे— जाति, वर्ग और औपचारिक शिक्षा के उच्चतर अवसरों का अभाव उपस्थित था। इसके समर्थन में एक भागीदार का कथन अवलोकनीय है, "हाँ, हमारे समय में तो बहुत लड़कियाँ पढ़ती थीं। हम लोग जब जय पंडित जी के यहाँ बगीचा में पढ़ते थे, तब थोड़ा कम लड़कियाँ पढ़ती थीं। जब अर्जुन में गए तो वहाँ बहुत लड़कियाँ पढ़ती थीं। जब हाई स्कूल में आए, तब विज्ञान वर्ग में लड़कियाँ कम आती थी फिर इंटर में और कम हो गईं। कला वर्ग में लड़कियाँ, लड़कों से ज्यादा पढ़ने आती थीं।" स्पष्ट है कि वर्ष 2000 तक आते-आते शिक्षण संस्थानों में गाँव की सभी जातियों, वर्गों, समुदायों के बालक एवं बालिकाओं का प्रवेश बढ़ा था, लेकिन उक्त वर्गों के औपचारिक शिक्षा के उच्चतर स्तरों की ओर संचरण और ठहराव की समस्या बनी रही।

जैसा कि पूर्व के खंड में बताया गया है कि वर्ष 1960 से 1985 के बीच प्राथमिक शिक्षा के लिए पटरी और चॉक मुख्य संसाधन थे। शिक्षक द्वारा मौखिक विधि का उपयोग किया जाता था। इसके बरअक्स इस दौर में लेखन सामग्री के रूप में कॉपी, कलम एवं दवात का प्रयोग किया जाने लगा था। इस दौर के भागीदार बताते हैं कि उनके समय में बाज़ार में स्याही उपलब्ध होती थी। इसे दवात में घोल लिया जाता था। इसके द्वारा लिखने के लिए लकड़ी की क्लिप का उपयोग किया जाता था। अधिकांश बच्चे क्लिप के स्थान पर गाँव में ही घास के रूप में उपलब्ध 'नरकट' को कलम के रूप में प्रयोग करते थे। भागीदार यह भी बताते हैं कि इस दौर में पुस्तकों की उपलब्धता हो चुकी थी। इसके समांतर ही कक्षा शिक्षण और परीक्षा का आयोजन होता था। वे यह भी जोड़ते हैं कि पुस्तकों को खरीदना अपने आप में एक 'सुविधा' थी जो गरीब वर्ग के लिए उपलब्ध नहीं थी। इस वर्ग के लोग पुरानी किताबों से काम चलाया करते थे। इस संदर्भ में एक भागीदार का अनुभव अवलोकनीय है, "कक्षा तीन से किताब से ही पढ़ते थे। कुछ किताबें खरीदते थे और कुछ माँगकर काम चलाते थे। जो ज्यादा गरीब होता था, वह गाँव में जो उससे आगे से पढ़ रहा होता था, उससे माँग लेता था। जिसको ज़रूरत होती थी, उसे पुरानी किताबें मिल भी जाती थीं।" एक अन्य भागीदार ने साझा किया कि निजी विद्यालयों में किताबों की संख्या और उनका मूल्य दोनों अधिक था। साक्षात्कार के दौरान प्रौढ़ भागीदारों ने अपनी कक्षा अधिगम की स्मृतियों को साझा करते हुए बताया कि वर्ष 1985 से 2000 के दौर में जब वे अध्ययन कर रहे थे तो प्राथमिक स्तर पर मुख्य रूप से हिंदी, गणित, इतिहास का अध्ययन कराया जाता था। इन विषयों के अलावा अंग्रेज़ी एवं कला विषयों को भी सिखाया जाता था। भागीदारों ने बताया कि शिक्षक गणित एवं कला को छोड़कर अन्य विषयों को पढ़ाने में अधिकांश रूप से व्याख्यान विधि का ही प्रयोग करते। गणित शिक्षण में आगमन-निगमन विधियों का प्रयोग करते थे और कला पढ़ाने में प्रदर्शन विधि का प्रयोग करते थे। इसके समर्थन में एक भागीदार का कथन इस प्रकार है, "हम लोग प्रतापपुर प्राइमरी में पढ़ते थे तो कक्षा 2 तक तो बस यही गणित में गिनती-पहाड़ा, जोड़-घटाना, गुना-भाग होता था। कक्षा 2 में धीरे-धीरे आलेख लिखना सिखाया जाता था।

फिर तीन से हिंदी, गणित और इतिहास की किताब पढ़ाई जाती थी। शुरू में श्यामपट्ट से देखकर लिखना होता था। बाद में बोलकर लिखवाने लगे, फिर आलेख सुलेख बोलकर लिखवाते थे और पढ़वाते भी थे। हिंदी की किताब सबके पास तो होती नहीं थी। जिसके पास होती थी, उससे लेकर कक्षा में बोलकर पाठ पढ़वाया जाता था और सब विद्यार्थी ध्यान से सुनते थे। कभी-कभी मास्टर साहब खुद कोई कविता या पाठ पढ़कर उसका मतलब बताते थे। फिर बच्चों से पढ़वाते थे। गिनती-पहाड़ा बोल-बोल कर याद करवाते और लिखवाते, फिर पटरी पर सवाल देते थे। जब कक्षा तीन से चार में गए तो इतिहास बोलकर पढ़ाते और कापी पर बोल-बोल कर लिखवाते भी, नहीं तो बता देते कि इस प्रश्न का उत्तर यहाँ से यहाँ तक है तो सब विद्यार्थी किताब से देखकर खुद लिख लेते थे। प्रश्न किताब में ही दिया रहता था। गणित में सवाल देते थे और किताब से सवाल बता देते कि ये करिए तो बच्चे अपना सवाल लगाते थे।"

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि उस दौर में प्राथमिक स्तर पर मुख्य रूप से हिंदी, गणित और इतिहास की शिक्षा दी जाती थी। प्रारंभिक कक्षाओं में हिंदी विषय में मुख्य रूप से अक्षर ज्ञान, मात्रा ज्ञान और शब्द ज्ञान पर बल दिया जाता था। शिक्षक बच्चों से अक्षर और मात्रा लिखवाकर पहचानने को कहते थे। इसके लिए शिक्षक द्वारा बच्चों से बार-बार इन अक्षरों को लिखने और बोल-बोल कर याद करने के अभ्यास कराए जाते थे। अक्षर और मात्रा ज्ञान हो जाने पर शब्द का निर्माण करना सिखाया जाता था। शब्द निर्माण करना सिखाने की प्रक्रिया के तहत शिक्षक द्वारा शब्द बोले जाते थे और बच्चे उन शब्दों को सुनकर लिखते थे। यह कार्य कक्षा 2 के स्तर तक पूर्ण किया जाता था। इसके पश्चात कक्षा तीन से पुस्तक पढ़ना और पुस्तक में दी गई कहानियों एवं कविताओं को याद कराया जाता था। गणित शिक्षण के दौरान शिक्षक कभी आगमन तो कभी निगमन विधियों का प्रयोग करते हुए बच्चों में गणितीय संक्रियाओं को सिखाने का प्रयास करते थे। इतिहास शिक्षण में शिक्षक प्रायः व्याख्यान विधि का ही प्रयोग करते थे। साक्षात्कार के दौरान प्रौढ़ भागीदारों ने बताया कि शिक्षण के दौरान शिक्षक विषय शिक्षण के अलावा नैतिक मूल्यों की शिक्षा पर बल देते थे। इसके अंतर्गत सामुदायिक सहयोग, स्वच्छता, समय की पाबंदी, ईमानदारी, कठिन परिश्रम जैसे विषयों पर बच्चों से चर्चा किया करते थे। शिक्षक विद्यार्थियों को तत्कालीन ग्रामीण एवं सामाजिक घटनाओं से परिचित करा कर उन्हें उन घटनाओं से सीख लेने की सलाह देते थे। इस दौर में प्राथमिक स्तर पर तो पाठ्य सहगामी क्रियाओं के रूप में वार्षिक कार्यक्रम, शारीरिक व्यायाम और खेलों का आयोजन किया जाता था, किंतु माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पाठ्य सहगामी क्रियाओं को कम महत्व दिया जाने लगा था। अंतर विद्यालय खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन वार्षिक आधार पर किया जाने लगा था। इस दौरान बच्चे स्वयं प्रतियोगिता की तैयारी करते थे। इसमें प्रायः शिक्षकों द्वारा कोई सहयोग नहीं किया जाता था। प्रायः बच्चे विद्यालय के बाहर ही खेल में सम्मिलित होते थे और मुख्य रूप से क्रिकेट खेल के रूप में प्रचलित था। विद्यालयी स्तर पर खेल प्रायः वार्षिक प्रतियोगिता के रूप में आयोजित होते थे।

इस दौर में प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में कठोर अनुशासन का पालन होता था। विद्यार्थियों को अनुशासित रखने हेतु शारीरिक दंड दिए जाते थे। इसके समर्थन में एक भागीदार का आख्यान अवलोकनीय है, "यहाँ प्राइमरी में तो शासन कड़ा था। समय से आइए, स्कूल के नियम से क्लास चले, पढ़िए और घर जाइए। स्कूल नहीं आए तो अगले दिन बढ़िया डंडे से खातिरदारी होती थी। जो पढ़ाया गया है, पढ़के तैयार रखिए। जो मास्टर बोले हैं, उसे नहीं करने पर बहुत मारते थे। डर के मारे सब बच्चे काम करके जाते थे।" विद्यालय के नियमों का उल्लंघन करने पर विद्यार्थियों को डंडे से पीटने और कक्षा में मुर्गा बनाने जैसे दंड का आम चलन था। उक्त अनुशासन व्यवस्था शिक्षकों के इस विश्वास को पुष्ट करती है कि डर बच्चों में अनुशासन लाएगा और जब बच्चे अनुशासित होंगे तभी वह आसानी से चीज़ों को सीख सकेंगे। उल्लेखनीय है कि यहाँ उनका सिखाने से तात्पर्य केवल विषयवस्तु का ज्ञान प्रदान करने से नहीं था। यहाँ शिक्षकों का सिखाने से आशय विषयवस्तु सिखाने के साथ-साथ शिक्षक द्वारा परिभाषित व्यवहार के मानकों का अनुबंधन भी था। इसे वे नैतिक शिक्षा के आधार पर वैध ठहराते थे। इसी कारण कठोर दंड व्यवस्था को अभिभावकों का समर्थन प्राप्त था।

साक्षात्कार के दौरान भागीदारों ने बताया कि 1985 से 2000 के मध्य शिक्षण संस्थानों के पूरक संस्थान के रूप में कोचिंग और ट्यूशन का उदय हो गया था। इस दौर में विद्यार्थी माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर इन पूरक संस्थानों में शिक्षा प्राप्त करने जाया करने करते थे। इसके समर्थन में एक भागीदार का कथन अवलोकनीय है, "कोचिंग में हम लोगों के समय फीस लगभग एक विषय का ऐसे ही 150–200 रुपया था। जैसे हम तो कोचिंग शुरू किए कक्षा 10 से, उस समय हम खाली अंग्रेज़ी का कोचिंग करते थे, क्योंकि वहीं हमें समझ नहीं आता था। हालाँकि हमारे साथ के कुछ बच्चे नवीं क्लास से ही वहाँ कोचिंग पढ़ते थे। उस समय यादव मास्टर का फीस 100 रूपये थी। फिर इंटर में आए तो चार विषयों की कोचिंग की — अंग्रेज़ी, फिजिक्स, केमिस्ट्री, और बायो। जहाँ हम कोचिंग पढ़ते थे वो घर से तीन कि.मी. दूर लालपुर में था, वहाँ एक विषय का 200 था, लेकिन अगर तीनों विज्ञान एक साथ पढ़िए तो 500 में तीनों हो जाता था।" निहितार्थ है कि उस दौर में शिक्षण संस्थानों के पूरक संस्थान के रूप में कोचिंग व ट्यूशन का महत्व बढ़ने लगा था। इसका कारण बच्चों में अधिक अंक लाने की आकांक्षा और बोर्ड परीक्षाओं में फेल होने का डर था। इन कोचिंग संस्थानों में स्कूल के शिक्षक ही शिक्षण कार्य किया करते थे। इन पूरक संस्थानों से उन्हें अतिरिक्त आय प्राप्त हो जाती थी। यह भी अवलोकनीय है कि कोचिंग संस्थान आर्थिक रूप से कमबल युवाओं के लिए शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ आय अर्जित करने के साधन भी बने।

समकालीन संदर्भों में विद्यालयी शिक्षा (2010 से 2023 तक)

प्रतापपुर गाँव में वर्ष 1960 से 1975 के बीच एक प्राथमिक विद्यालय के संचालन की चुनौती थी। वर्ष 1985–2000 के बीच इस गाँव का एकमात्र सरकारी विद्यालय भी संसाधन विहीन स्थिति में था। इस दौरान निजी विद्यालय उभर रहे थे लेकिन इनके संचालन की चुनौती थी। इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक इस गाँव में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति का कायाकल्प हो चुका था। वर्तमान में

इसी गाँव और आसपास के गाँवों में वर्तमान में कुल पाँच प्राथमिक विद्यालय संचालित होते हैं। इनमें एक सरकारी विद्यालय और चार निजी विद्यालय हैं। निजी विद्यालयों में से दो अंग्रेज़ी माध्यम के विद्यालय हैं। सभी निजी स्कूल 'केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड' द्वारा मान्यता प्राप्त है। अवलोकनीय है कि गाँव का सरकारी विद्यालय सर्वाधिक संसाधन संपन्न है। इस विद्यालय के अलावा किसी अन्य विद्यालय में न तो लाइब्रेरी है, और न ही स्मार्ट क्लास। इस विद्यालय भवन की दीवारें आकर्षक चित्रों सहित आरंभिक साक्षरता को सुगम करने वाली कहानियों, गणितीय सवालों और प्रेरक संदेशों से युक्त है। यद्यपि निजी विद्यालय के भवन सुसज्जित हैं, लेकिन इनमें खेल के मैदान का अभाव है। ये निजी विद्यालय 'कम शुल्क लेने वाले निजी विद्यालयों' के समतुल्य हैं। सरकारी विद्यालय में प्राथमिक स्तर के लिए प्रधानाध्यापक सहित दो शिक्षक एवं तीन शिक्षिकाएँ हैं। पूर्व माध्यमिक विद्यालय में भी प्राचार्य सहित दो शिक्षक एवं तीन शिक्षिकाएँ उपलब्ध हैं। इसी परिसर के अंतर्गत संचालित राजकीय हाई स्कूल के अंतर्गत केवल चार शिक्षिकाएँ उपलब्ध हैं। गाँव की सीमा से लगे हुए पूर्व माध्यमिक विद्यालय मिर्जामुराद में प्राध्यापिका सहित कुल सात अध्यापक और पाँच कर्मचारी हैं। अन्य निजी विद्यालयों में आवश्यकतानुरूप पर्याप्त अध्यापक और कर्मचारी उपलब्ध हैं।

संसाधन एवं शिक्षक संपन्नता के बावजूद भी ग्रामीण अभिभावक सरकारी विद्यालय को अधिमान (महत्व) नहीं देते हैं। सरकारी विद्यालय के प्रधानाध्यापक बताते हैं कि उनके विद्यालय में केवल गरीब और निम्नवर्गीय परिवारों के बच्चे ही नामांकन कराते हैं। ऐसे अभिभावक हैं, जो किसी प्रकार से इतनी आय अर्जित कर पाते हैं कि अपने रोज़ाना के खर्च से कुछ पैसे बचा पाए तो वे अपने बच्चों को अंग्रेज़ी माध्यम के निजी विद्यालयों में ही भेजना पसंद करते हैं। इस विद्यालय की ही एक अन्य शिक्षिका बताती हैं कि ग्रामीण अभिभावकों के मन में यह धारणा बन चुकी है कि सरकारी विद्यालय के अध्यापक केवल सरकार का पैसा लूट रहे हैं। विद्यालयों में ठीक से पढ़ाते नहीं हैं। जबकि पिछली परीक्षा में उनके विद्यालय से पढ़े दो छात्रों ने हाई स्कूल की परीक्षा में जिला स्तर पर मेरिट में स्थान प्राप्त किया था।

ग्रामीण अभिभावक इस तरह का विश्वास क्यों धारण करते हैं? इस बारे में जब अभिभावकों से चर्चा की गई तो ज्ञात हुआ कि अंग्रेज़ी माध्यम की शिक्षा बच्चों के भविष्य के लिए अनिवार्य है। इस कारण वे निजी विद्यालयों को पसंद करते हैं। अभिभावकों का यह भी मानना है कि निजी विद्यालय में बच्चों पर पूरा ध्यान दिया जाता है। ध्यान देने से उनका तात्पर्य कक्षा कार्य, गृह कार्य और परीक्षा की गंभीरता और नियमितता से था। इससे यह प्रकट होता है कि अभिभावक किताबी ज्ञान के आत्मसातीकरण को ही अच्छी पढ़ाई का संकेतक मान रहे हैं। निजी विद्यालय उनकी इस अपेक्षा को पूरा कर रहे हैं। इस प्रवृत्ति के आधार पर सरकारी और निजी विद्यालयों में शिक्षण-अधिगम की भिन्नता का अवलोकन किया गया।

क्षेत्र में कार्य के दौरान पाया गया कि सरकारी और निजी विद्यालय दोनों के कार्यदिवस की अवधि और चक्र लगभग समान है। दोनों तरह के विद्यालयों में अध्यापक व्याख्यान विधि का ही प्रयोग करते हैं। कक्षा प्रारंभ होने पर शिक्षक सर्वप्रथम या तो बच्चों से पूर्व की कक्षा में पढ़ाए गए विषय के अंतिम भाग के बारे में पूछते हैं और अगली विषयवस्तु को पढ़ाना प्रारंभ कर देते हैं या वे कक्षा में आकर बताते

हैं कि कल या पिछली कक्षा में अंतिम विषय यह पढ़ाया गया था और वे नए विषय को पढ़ाना प्रारंभ कर देते हैं। उदाहरण के लिए, सरकारी विद्यालय में कक्षा 3 में हिंदी की शिक्षिका प्रवेश करती हैं। प्रवेश करने के पश्चात विद्यार्थियों से पूछती हैं कि कल उन्होंने जो पढ़ाया था, वह याद है? बच्चे एक सुर में उत्तर देते हैं, "हाँ मैडम।" शिक्षिका पुनः बच्चों को पुस्तकें निकालने का निर्देश देते हुए पूछती हैं, "कल क्या पढ़ाया गया था?" बच्चे उत्तर देते हैं, "कल 'शेखीबाज मक्खी' वाला पाठ पढ़ाया गया था।" इसके पश्चात शिक्षिका बोलती हैं, "ठीक है आज हम 'चाँद वाली अम्मा, पढ़ेंगे।" और वे पाठ पढ़ाना प्रारंभ करती हैं। पाठ पढ़ाने के क्रम में सर्वप्रथम शिक्षिका एक-एक अनुच्छेद पढ़ती जाती हैं और बीच-बीच में कठिन शब्दों की व्याख्या करती हैं। पाठ समाप्ति के पश्चात वे पुनः बच्चों से पूछती हैं, "समझ में आया बच्चों?" बच्चे एक साथ उत्तर देते हैं, "हाँ मैडम।" फिर शिक्षिका बोलती हैं, "ठीक है इसे घर से पढ़कर आना, कल पहले इसमें हम सवाल पूछेंगे उसके बाद अगली कक्षा शुरू करेंगे।"

इसी तरह से निजी विद्यालय में कक्षा 5 में पर्यावरण अध्ययन का शिक्षण व्याख्यान विधि द्वारा किया गया। निजी विद्यालय सरकारी विद्यालय से इस अर्थ में भिन्न थे कि वहाँ व्याख्यान विधि से पाठ को पढ़ाने के बाद उसके प्रश्न-उत्तर को लिखने, याद करने और मूल्यांकन का चक्र कठोरता से पूर्ण होता था, जबकि सरकारी विद्यालय में इस पक्ष में शिथिलता थी। यह भी उल्लेखनीय है कि निजी विद्यालयों में पाठ्य सहगामी क्रियाओं को अपेक्षाकृत कम अधिमान दिया जाता है। जबकि सरकारी विद्यालयों में पाठ्य सहगामी क्रियाओं को शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का अभिन्न अंग माना गया है और इनका आयोजन भी किया जाता है। जबकि निजी विद्यालयों में पाठ्यपुस्तक आधारित विषयवस्तु के शिक्षण पर अधिक बल दिया जाता है। उदाहरण के लिए, प्रतापपुर गाँव स्थित सरकारी समग्र विद्यालय की दैनिक गतिविधियों में पाठ्य सहगामी क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। इसके अंतर्गत खेल, गतिविधि आधारित कार्य और गतिविधि आधारित क्रियाओं को सम्मिलित किया गया है। विद्यालय के दैनंदिन क्रियाकलापों में शिक्षण के लिए निर्धारित समयावधि में अंतिम आधा घंटा खेल के लिए निर्धारित किया गया। इस दौरान प्रायः बच्चे शिक्षकों के निर्देशन में विभिन्न प्रकार के खेलों में हिस्सा लेते हैं। इस विद्यालय द्वारा अंतर-विद्यालय या मंडल स्तरीय या जिला स्तरीय प्रतियोगिता में विद्यार्थियों की प्रतिभागिता को सुनिश्चित किया जाता है। प्रतियोगिता से एक सप्ताह पूर्व ही बच्चों को शिक्षक के नेतृत्व में विभिन्न खेलों में अभ्यास करने का अवसर प्रदान कर दिया जाता है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं के अंतर्गत रैली, नाटक एवं वृक्षारोपण जैसे कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जाता है। निजी विद्यालय में केवल बाल सभा का आयोजन किया जाता है। इन विद्यालयों में खेल प्रतियोगिताओं में विद्यार्थियों की सहभागिता नहीं कराई जाती है। इन विद्यालयों में वार्षिकोत्सव का आयोजन सर्वप्रमुख गतिविधि थी।

लेख के पिछले खंड में वर्ष 1985 से 2000 के मध्य शिक्षा की पूरक संस्थाओं के रूप में कोचिंग-ट्यूशन का उभार होने लगा था। वर्ष 2010 से 2023 के बीच ये संस्थाएँ 'पूरक' की भूमिका से निकलकर 'समानांतर' की भूमिका में आ चुकी हैं। कोविड 2019 के बाद इनके ऑनलाइन संस्करणों का ग्रामीण क्षेत्र में भी प्रसार हुआ है। क्षेत्र कार्य के दौरान ज्ञात हुआ कि वर्तमान समय में अधिकांश ग्रामीण परिवार के बच्चे प्राथमिक स्तर से ही शिक्षा की इन संस्थाओं के सहारे

शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। बच्चों और अभिभावकों का यह मानना है कि यदि अच्छी शिक्षा लेनी है और अधिक अंक प्राप्त करने हैं तो शुरू से कोचिंग करना ज़रूरी है। इस संदर्भ में एक अभिभावक कहते हैं— "बच्चों के लिए ट्यूशन तो बहुत ज़रूरी है, ट्यूशन नहीं करेंगे तो और बच्चों की तुलना में कमबल रह जाएँगे, तो आगे बड़ी समस्या होगी, नौकरी नहीं मिलेगी।" इसका समर्थन बच्चे भी करते है और कहते हैं कि गाँव में जो अच्छे पढ़ने वाले बच्चे हैं वह सभी कोचिंग कर रहे हैं, अगर वे कोचिंग नहीं करेंगे तो पिछड़ जाएँगे। उल्लेखनीय है कि इन कोचिंग संस्थानों की फीस बहुत अधिक होती है। यह कोचिंग संस्थान भी दो प्रकार के हैं। हिंदी माध्यम से पढ़ाने वाले कोचिंग संस्थान और अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़ाने वाले कोचिंग संस्थान। हिंदी माध्यम के कोचिंग संस्थान की तुलना में अंग्रेज़ी माध्यम के कोचिंग संस्थानों की फीस बहुत अधिक है। अधिकांश ग्रामीण बच्चे जो प्राथमिक स्तर से ही कोचिंग करना प्रारंभ कर रहे हैं, वे अंग्रेज़ी माध्यम के निजी विद्यालयों में पढ़ने वाले हैं। गाँव में कोचिंग संस्थानों का संचालन निजी शिक्षण संस्थानों के शिक्षकों, गाँव के शिक्षित युवक-युवतियों द्वारा किया जा रहा है। गाँव के ही ऐसे शिक्षित युवा जो शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात नौकरी नहीं प्राप्त कर सके हैं, और सरकारी नौकरियों हेतु तैयारी का कार्य कर रहे हैं, वे प्रायः घर जाकर बच्चों को ट्यूशन देते हैं। उल्लेखनीय है कि इन कोचिंग संस्थानों में अधिकांशतः वही शिक्षक शिक्षण कार्य कर रहे हैं जो किसी निजी विद्यालय में शिक्षण का कार्य कर रहे हैं। स्पष्ट है कि कोचिंग और ट्यूशन की व्यवस्था की स्वीकार्यता के मूल में शिक्षा की रटंत पद्धति द्वारा परीक्षा पास करने की सुनिश्चितता का भाव कार्य कर रहा है। इसके प्रभाव में सीखने के दौरान शिक्षार्थी की आनुभविक दुनिया की उपेक्षा स्वाभाविक है। इस तरह की समांतर संस्थाएँ घर पर विद्यालय प्रदत्त कार्य करने में अभिभावक द्वारा सहयोग की असमर्थता को जताती है। यही कारण है कि अंग्रेज़ी माध्यम के विद्यालय कोचिंग के प्रति अधिक आकर्षित हो रहे हैं।

निष्कर्ष एवं निहितार्थ

इस शोध पत्र में प्रतापपुर गाँव के बुज़ुर्गों, प्रौढ़ों, किशोरों एवं बच्चों के विद्यालयी अनुभवों को आधार बनाते हुए ग्रामीण परिवेश में अधिगम पारिस्थितिकी की निरंतरता और बदलाव को व्याख्यायित किया गया है। प्रस्तुत वृत्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि स्वतंत्रता के बाद के दशकों में ग्रामीण भारत में विद्यालयी शिक्षा के प्रति ललक थी। इसी कारण सामुदायिक प्रयास से गाँव के बच्चों की विद्यालयी शिक्षा हेतु प्रबंध किया जा रहा था। यद्यपि विद्यालयों का संसाधन आधार कमबल था, लेकिन न के बराबर फीस और समुदाय के द्वारा संसाधन सुलभता से कुछ विद्यालय संचालित थे। इन विद्यालयों में आरंभिक साक्षरता गणित और हिंदी को केंद्र में रखकर मौखिक विधि से पढ़ाई हो रही थी। इन विद्यालयों की सुपरिभाषित और व्यवस्थित संस्थागत दिनचर्या नहीं थी, बल्कि अध्यापक द्वारा पढ़ाई, खेल एवं अन्य गतिविधियों का आयोजन स्वायत्त ढंग से किया जाता था। इन विद्यालयों के अध्यापक समुदाय द्वारा एक 'शिक्षित' वयस्क की छवि में स्वीकृत थे। विद्यार्थी भी इन्हें 'पिता' तुल्य मानकर इनके द्वारा लागू सख्त अनुशासन को वैध मानते थे। अस्सी और नब्बे के दशक में प्रतापपुर गाँव सहित अन्य गाँवों में विद्यालयी शिक्षा के लिए सरकार द्वारा गहन प्रयास आरंभ हुआ था। इसी दौर में कम शुल्क लेने वाले निजी विद्यालय भी पनपने लगे थे। इन दोनों के प्रभाव में विद्यालयी शिक्षा के

अवसरों की उपलब्धता बढ़ी थी। इस दौर की एक मुख्य प्रवृत्ति सरकारी विद्यालयों की तुलना में निजी विद्यालयों के प्रति बढ़ता आकर्षण था।

इस प्रभाव में सरकारी विद्यालय कम आय वर्ग वालों के प्रतिनिधि बने जबकि निजी विद्यालय शुल्क देकर बेहतर शिक्षा का विकल्प बने। निजी विद्यालयों की बेहतर शिक्षा किताबों पर आधारित रटंत पद्धति द्वारा संचालित और परीक्षा केंद्रित थी। ग्रामीण अध्यापक इस पद्धति को स्वीकार कर रहे थे क्योंकि इसके विकल्प में उन्हें सरकारी अध्यापकों की लापरवाही और अनुपस्थिति की मार झेल रहे विद्यालय ही उपलब्ध थे। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों में ग्रामीण भारत की विद्यालयी शिक्षा का कायाकल्प हो चुका है। शिक्षा के अधिकार कानून सहित अन्य योजनाओं के प्रभाव में सरकारी विद्यालय समुन्नत और सक्रिय हैं। इन विद्यालयों में कक्षा और कक्षेतर गतिविधियों की संतुलित योजना है। फिर भी, ग्रामीण अभिभावक कम शुल्क लेने वाले निजी विद्यालयों और महंगे कॉन्वेंट स्कूलों की कक्षा केंद्रित शिक्षा को अधिमान दे रहे हैं।

इस दौर में कोचिंग एवं ट्यूशन एक समानांतर धारा के रूप में उपस्थित हैं। इनकी पैठ भी गहरी है। निजी संस्थान एवं कोचिंग व ट्यूशन पूरी तरह से शिक्षक केंद्रित और परीक्षोन्मुखी शिक्षण पर आधारित हैं। इनकी स्वीकार्यता अभिभावकों की उस आकांक्षा का प्रतिफल है, जो भविष्य की सफलता के लिए अधिक अंकों से परीक्षा पास करने को ही साध्य मानता है। इस आकांक्षा ने विद्यार्थियों को विषय ज्ञान से जुड़ी और विद्यालय सदृश परिस्थितियों की दिनचर्या में बाँध दिया है। इस अध्ययन से ज्ञात होता है कि गाँव में पिछले कुछ वर्षों में ई-माध्यमों (ऑनलाइन माध्यम) का चलन बढ़ा है। ग्रामीण अभिभावक एवं विद्यार्थी इससे जुड़े संसाधनों को महत्वपूर्ण मान रहे हैं। यह अवलोकनीय है कि इन संसाधनों की घर के परिवेश में उपलब्धता सीमित है। इसी कारण इनकी उपलब्धता विद्यालय की 'ब्राडिंग' का मुख्य आधार बन रही है। वर्तमान में ग्रामीण परिवेश शिक्षा के बाज़ारीकरण का प्रभावी उदाहरण बन चुके हैं। इन क्षेत्रों में विद्यालय किसी भी तरह की नई सुविधा के नाम पर धन उगाही कर रहे हैं। दुःखद पक्ष यह है कि सरकारी विद्यालयों में हुए सुधार धरातल पर दिखे रहे हैं, लेकिन ये विद्यालय अपनी खोई साख वापस नहीं अर्जित कर पाए हैं। इसका एक मुख्य कारण सरकारी और निजी विद्यालयों के बीच अभिभावकों के आय वर्ग पर आधारित विभाजन है।

परिणामस्वरूप वर्तमान में संसाधन संपन्न सरकारी विद्यालय गरीब और वंचित वर्ग के विद्यार्थियों को पढ़ा रहे हैं, जहाँ शिक्षकों और विद्यार्थियों के बीच 'हीनता' का मॉडल कार्य कर रहा है। कम शुल्क लेने वाले निजी विद्यालय सीमित संसाधनों के साथ कठोर अनुशासन में पुस्तक केंद्रित शिक्षण से यह भ्रम बनाए हुए हैं कि वे विद्यार्थियों की भावी सफलता के कारगर कारखाने हैं। निष्कर्षतः प्रस्तुत वृत्त अध्ययन बताता है कि ग्रामीण परिवेश में सामाजिक गतिशीलता के लिए शिक्षा की व्यापक स्वीकृति है लेकिन शिक्षा द्वारा सामाजिक रूपांतरण के लक्ष्य पर हितरक्षक मौन हैं। इस परिवेश में संसाधन संपन्नता, विद्यार्थियों की अकादमिक उपलब्धि और उच्च शिक्षा की गतिशीलता को पहचाना जा रहा है लेकिन अप्रत्यक्ष तरीके से होने वाले बहिष्करण को संज्ञान में नहीं लिया जा रहा है। उक्त परिस्थितियों में ग्रामीण विद्यालयों के संदर्भ में

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के क्रियान्वयन के दौरान ध्यान रखना होगा कि विद्यालय की संसाधन संपन्नता, नामांकन व उपलब्धि के पैमाने पर सफलता के साथ आवश्यक है कि विद्यालय के हितधारक और हितरक्षक सामाजिक रूपांतरणकारी चेतना से युक्त हों। इस दशा में ही शिक्षा द्वारा सामाजिक समरसता और सशक्तीकरण के लिए लक्ष्य में योगदान दिया जा सकेगा। इस शोध कार्य के आधार पर ग्रामीण परिवेश के विद्यालयों हेतु प्रमुख शैक्षिक निहितार्थ निम्नलिखित हैं—

- सरकारी विद्यालयों के आधारभूत संसाधनों में सुधार हुआ है। विशेष रूप से शिक्षकों की नियुक्ति और उनके प्रशिक्षण को लेकर सकारात्मक परिवर्तन हुआ है। इस परिवर्तन से समुदाय लाभान्वित हो इसलिए शिक्षकों को समुदाय के साथ कार्य करते हुए उनमें सरकारी विद्यालयों के प्रति विश्वास बहाल करना होगा।
- वर्तमान में विद्यालयों में प्रवेश के समानांतर विद्यार्थियों की उपलब्धि और भावी सफलता के लिए विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता है। इसके लिए आनुभविक अधिगम पद्धतियों का उपयोग करना होगा। इस दिशा में पहल करने पर शिक्षण के लिए संसाधनों के अभाव की समस्या से पार पाया जा सकता है।
- यह शोध अध्ययन बताता है कि शिक्षकों और समुदाय को मिलकर गाँव बनाम नगर के द्वैत को समाप्त करने की आवश्यकता है। इस कार्य के लिए विद्यालय एक प्रमुख जागरूकता केंद्र बन सकते हैं, जहाँ विद्यार्थियों को संपोषणीय एवं समावेशी समाज के नागरिक दायित्वों हेतु सचेत किया जा सकता है। उन्हें नगर में नौकरी करने की ओर न ढकेलकर व्यावसायिक शिक्षा द्वारा स्वावलंबी बनाने के विकल्प पर भी विचार करना होगा।
- यह शोध कार्य बताता है कि ग्रामीण परिवेश में शिक्षक को एक सलाहकार एवं मार्गदर्शक की भूमिका में देखा जा रहा है। इस भूमिका में शिक्षकों से प्रभावी कक्षा शिक्षण के साथ-साथ विद्यार्थियों को मनो-सामाजिक सहयोग उपलब्ध कराने की अपेक्षा भी है। शिक्षकों को ग्रामीण परिवेश के विद्यालयों में कार्य करते हुए इस अपेक्षा को भी संज्ञान में लेना होगा।
- ग्रामीण अधिगम पारिस्थितिकी में प्राकृतिक घटकों की उपलब्धता के समानांतर अब सूचना प्रौद्योगिकी का भी हस्तक्षेप बढ़ रहा है। इसे ध्यान में रखते हुए शिक्षकों को विद्यार्थियों को ऐसे अधिगम माध्यमों और संसाधनों से जोड़ने का प्रयास करना होगा, जिससे वे स्थानीय संसाधनों के साथ सूचना प्रौद्योगिकी का समावेश करते हुए सतत सीखने हेतु सीख सकें।

संदर्भ

कुमार, के. 2014. रूरलिटी, मॉडर्निटी एंड एजुकेशन. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*. 49(22). पृष्ठ संख्या 38–43.

कुमार, सत्येन्द्र. 2016. *बदलता गाँव बदलता देहात*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

जोधका, एस.एस. 2016. *रिवीजिटिंग रूरल इन ट्वेंटी* फर्स्ट सेंचुरी. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*. 51(26). पृष्ठ संख्या 5–7.